सुशील कुमार सेन

बनाम

बिहार राज्य

17 मार्च, 1975

[ए. एन. रे, मुख्य न्यायाधीश, के. के. मैथ्यू एवं वी. आर. कृष्णा अय्यर, न्यायमूर्तिगण]

अभ्यास- अपीलीय न्यायालय द्वारा समीक्षाधीन आदेश को अनुरक्षणीय न मानना- इसका प्रभाव।

अपीलकर्ता की भूमि का अधिग्रहण किया गया और भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने 14 रुपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजा देने का आदेश दिया। अपीलकर्ता ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 18 के तहत संदर्भ हेतु आवेदन किया और 18-8-1961 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने यह निर्णय दिया कि वह 200 रुपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजे का हकदार है। उत्तरदाता राज्य ने प्रक्रिया संहिता की धारा 47, नियम 1 के तहत फैसले की समीक्षा के लिए अपील की। 26-9-1961 को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने समीक्षा याचिका स्वीकार कर ली और मुआवजे को घटाकर 75 रुपये प्रति कट्ठा कर दिया। उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय में 18-8-1961 और 26-9-1961 के दोनों डिक्री के विरुद्ध अपील दायर की, लेकिन वास्तव में यह अपील केवल दूसरे डिक्री के विरुद्ध थी। अपीलकर्ता ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष समीक्षा याचिका की वैधता को चुनौती देते हुए एक प्रति-अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने माना कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पुनर्विचार याचिका पर विचार करना गलत था, लेकिन गुण-दोष के आधार पर उच्च न्यायालय ने उत्तरदाता की अपील के साथ-साथ अपीलकर्ता की प्रति-अपील को भी खारिज कर दिया और इस प्रकार 75 रुपये प्रति कट्ठा की दर से दिए गए मुआवजे को बरकरार रखा।

अपील स्वीकार करते हुए इस न्यायालय ने,

अभिनिर्धारित किया: यह सर्वविदित है कि किसी डिक्री की समीक्षा हेतु आवेदन स्वीकार करने का परिणाम पारित डिक्री को निरस्त करना होता है। जब उत्तरदाता ने उच्च न्यायालय में अपील दायर की, तो वह दिनांक 18-8-1961 के डिक्री के विरुद्ध अपील दायर नहीं कर सकता था, क्योंकि वह डिक्री दिनांक 26-9-1961 को समीक्षा के बाद पारित डिक्री द्वारा पहले ही निरस्त कर दिया गया था। अतः उत्तरदाता द्वारा उच्च न्यायालय में दायर की गई अपील केवल पुनर्विचार के बाद पारित डिक्री के विरुद्ध ही हो सकती थी। जब उच्च न्यायालय ने यह माना कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पुनर्विचार की अनुमति देना गलत था, तो उसे प्रति-अपील की अनुमति देनी चाहिए थी। चूंकि 18-8-1961 को पारित डिक्री, जिसमें 200 रुपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजा देने का प्रावधान था, पुनर्जीवित होकर पुनः प्रभावी हो गई थी, और उत्तरदाता द्वारा उस डिक्री के विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई थी, इसलिए वह डिक्री अंतिम हो गई थी। [943 जी-944 ए-सी]

द्वारा कृष्णा अय्यर, न्यायमूर्ति :

[यद्यपि अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए, संसद इस बात पर विचार कर सकती है कि क्या न्यायाधीश को न्याय का अंतिम संरक्षक बनाना उचित होगा, इसके लिए एक व्यापक, यद्यपि सावधानीपूर्वक शब्दों में, प्रावधान किया जाना चाहिए, जहाँ न्यायसंगत राहत में बाधा प्रक्रियात्मक कानून में निहित, यहाँ तक कि गंभीर खामियों से संबंधित हो। वर्तमान वाद में, राज्य ने दीवानी न्यायालय द्वारा दिए गए मुआवजे की दर में असाधारण वृद्धि को चुनौती देने के लिए लगभग हर वह कदम उठाया जो एक समझदार वादी उठा सकता था, लेकिन उच्च न्यायालय में दी गई वृद्धि पर आपत्ति न करने के परिणामस्वरूप प्रक्रियात्मक कानून ने मौलिक अधिकारों और वास्तविक न्याय पर प्रभुत्व जमा लिया।] [944 एफ-एच]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: वर्ष 1970 की दीवानी अपील संख्या 1252

पटना उच्च न्यायालय के मूल डिक्री संख्या 81 वर्ष 1962 के विरुद्ध अपील में दिनांक 16 फरवरी, 1968 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध।

अपीलकर्ता के लिए - *पी. के. चटर्जी और रथिन दास*

उत्तरदाता के लिए - *डी. गोबर्धन*

मुख्य न्यायाधीश ए. एन. रे एवं न्यायमूर्ति के. के. मैथ्यू का निर्णय न्यायमूर्ति मैथ्यू द्वारा सुनाया गया। न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्णा अय्यर ने एक अलग राय दी।

मैथ्यू, न्यायमूर्ति - अपीलकर्ता 3.30 एकड़ भूमि का स्वामी था, जो लगभग 7 बीघा, 17 कट्ठा और 14 धुर के बराबर है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधानों के तहत भूमि का अधिग्रहण किया गया था। भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने 12-10-1957 को अपने पंचाट में भूमि के लिए 14 रुपये प्रति *कट्ठा* की दर से मुआवजा दिया। वृक्षों और अन्य सुधारों के मूल्य सहित कुल मुआवजा 6,775.22 रुपये था। अपीलकर्ता इस मुआवजे से असंतुष्ट था। उसने भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 18 के तहत मामले को जिला न्यायालय में भेजने के लिए भूमि अधिग्रहण समाहर्ता के समक्ष आवेदन दायर किया और प्रति *कट्ठा* 500 रुपये की दर से भूमि के मुआवजे की मांग की। वाद को संदर्भित किया गया और पूर्णिया के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने 18-8-1961 के अपने निर्णय में पाया कि अपीलकर्ता अधिग्रहित भूमि के लिए 200 रुपये प्रति कट्ठा की दर से मुआवजे का हकदार है और अन्य मदों के तहत मुआवजे की राशि में कुछ अन्य संशोधन भी किए। 22-8-1961 को उत्तरदाता, बिहार राज्य ने, दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 47, नियम 1 के तहत, 18-8-1961 के निर्णय की समीक्षा के लिए आवेदन दायर किया, जिसका आधार भूमि के बाजार मूल्य के संबंध में नए और महत्वपूर्ण साक्ष्यों की खोज थी, जो उचित सावधानी बरतने के बावजूद उसे उपलब्ध नहीं थे। अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने पुनर्विचार याचिका स्वीकार कर ली और 26-9-1961 को नया निर्णय सुनाते हुए भूमि के मुआवजे को 200 रुपये से घटाकर 75 रुपये प्रति *कट्ठा* कर दिया। इसके बाद उत्तरदाता ने पटना उच्च न्यायालय में अपील संख्या 81/1962 दायर की। अपील ज्ञापन में कहा गया था कि अपील दिनांक 18-8-1961/26-9-1961 के डिक्री के विरुद्ध दायर की जा रही है, लेकिन अपील ज्ञापन में दिए गए

आधार और अदा की गई न्यायालयी शुल्क से स्पष्ट होता है कि अपील केवल दिनांक 26-9-1961 के उस निर्णय के विरुद्ध थी जिसमें 75 रुपये प्रति *कट्ठा* की दर से मुआवजा दिया गया था, न कि दिनांक 18-8-1961 के उस निर्णय के विरुद्ध जिसमें 200 रुपये प्रति *कट्ठा* की दर से मुआवजा दिया गया था। अपीलकर्ता ने उत्तरदाता द्वारा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर पुनर्विचार याचिका और उसके द्वारा पारित आदेश को चुनौती देते हुए एक प्रति-अपील दायर की, जिसमें याचिका को स्वीकार करते हुए 18-8-1961 के डिक्री को निरस्त कर दिया गया था। इस अपील और प्रति-अपील का निपटारा उच्च न्यायालय के 16-2-1968 के निर्णय द्वारा किया गया। उच्च न्यायालय ने पाया कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने पुनर्विचार याचिका पर विचार करने और 18-8-1961 के निर्णय एवं डिक्री को अपास्त करने में गलती की थी, फिर भी, उसने उत्तरदाता द्वारा दायर अपील पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया और अपील एवं प्रति-अपील को खारिज करते हुए अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के 26-9-1961 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा भूमि के लिए 75/- रुपये प्रति *कट्ठा* की दर से दिए गए मुआवजे को बरकरार रखा। यह अपील, एक प्रमाण पत्र के आधार पर, उच्च न्यायालय के डिक्री के विरुद्ध दायर की गई है।

यह सर्वविदित है कि किसी डिक्री की समीक्षा के लिए आवेदन स्वीकार करने का प्रभाव पारित डिक्री को निरस्त करना होता है। समीक्षा के बाद पारित किया गया डिक्री, चाहे वह मूल रूप से पारित डिक्री को संशोधित करे, उलट दे या पुष्टि करे, एक नया डिक्री होता है जो मूल डिक्री का स्थान लेता है (देखें *निबरन चंद्र सिकदर बनाम अब्दुल हकीम*[1], *कन्हैयलाल*

1 ए.आई.आर. 1928 कलकत्ता 418.

बनाम बलदेव प्रसाद[2]*, बृजबासो लाल बनाम सैग राम*[3] *और प्यारी मोहन कुंडू बनाम कालू खान*[4]

उत्तरदाता ने 18-8-1961 के उस डिक्री के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की, जिसमें अधिग्रहित भूमि के लिए 200 रुपये प्रति *कट्ठा* की दर से मुआवजा देने का आदेश दिया गया था। इसके विपरीत, उसने उस डिक्री की समीक्षा की मांग की और उसे अपास्त करवाने में सफल रहा। जब उसने उच्च न्यायालय में अपील संख्या 81/1962 दायर की, तब वह अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित 18-8-1961 के डिक्री के खिलाफ अपील दायर नहीं कर सकता था, क्योंकि उस समय तक वह डिक्री समीक्षा के बाद पारित 26-9-1961 के डिक्री द्वारा निरस्त हो चुका था। जब उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने पुनर्विचार की अनुमति देकर गलती की है, तो उसे प्रति-अपील की अनुमति देनी चाहिए थी। चूंकि उत्तरदाता द्वारा 18-8-1961 को पारित उस डिक्री के विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई थी जिसमें भूमि के लिए 200 रुपये प्रति *कट्ठा* की दर से मुआवजा दिया गया था, इसलिए वह डिक्री अंतिम हो गया। जब उच्च न्यायालय ने पाया कि पुनर्विचार याचिका गलत तरीके से स्वीकार की गई थी क्योंकि याचिका पुनर्जीवित हो गई थी और दोबारा लागू हो गई थी, तब उत्तरदाता ने उस डिक्री के खिलाफ अपील दायर करने का कोई प्रयास नहीं किया।

उच्च न्यायालय को प्रतिवाद अपील स्वीकार कर लेनी चाहिए थी; और अपील को खारिज कर देना चाहिए था, जो समीक्षा के बाद 26-9-1961 को पारित डिक्री के खिलाफ थी, और केवल उसी के खिलाफ हो सकती थी। अतः हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित

---

2 आई.एल.आर. 28 इलाहाबाद 240.

3 आई.एल.आर. 34 इलाहाबाद 1282.

4 आई.एल.आर. 44 कलकत्ता 1011.

निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हैं और अपील स्वीकार करते हैं। इस निर्णय का प्रभाव यह होगा कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा दिनांक 18-8-1961 को पारित डिक्री बहाल हो जाएगा। हम लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर - मैं अपने विद्वान भाई मैथ्यू न्यायमूर्ति द्वारा प्रतिपादित विधि के अचूक तर्क द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से खेदपूर्वक सहमत हूँ। कानून के हाथों न्याय की मृत्यु एक न्यायाधीश के अंतरात्मा को झकझोर देती है और कानून सुधारक पर तीखा प्रश्न उठाती है।

कुछ प्रणालियों में प्रक्रियात्मक कानून इतना हावी हो जाता है कि वह मौलिक अधिकारों और वास्तविक न्याय पर हावी हो जाता है। मानवतावादी नियम, जिसके अनुसार प्रक्रिया कानूनी न्याय की दासी होनी चाहिए, स्वामिनी नहीं, न्यायाधीशों को अवशिष्ट शक्ति प्रदान करने पर विचार करने के लिए बाध्य करता है, ताकि वे न्यायत: के तहत कार्य कर सकें, जहाँ अन्यथा परिणाम अत्यंत अन्यायपूर्ण और दुखद होगा। वर्तमान मामले में, राज्य ने दीवानी न्यायालय द्वारा दिए गए मुआवजे की दर में असाधारण वृद्धि को चुनौती देने के लिए लगभग हर वह कदम उठाया जो एक समझदार वादी उठा सकता था। और, बाद में पता चला कि पुनर्विचार याचिका और अपीलीय चरण में मिली सफलता ही पक्ष के लिए विनाशकारी साबित हुई। शायद, सरकार अपील में दिए गए वेतन वृद्धि को सफलतापूर्वक चुनौती दे सकती थी, वहाँ अतिरिक्त सबूत पेश करके। लेकिन महत्वपूर्ण प्रक्रियात्मक खामियों के निर्मम परिणामों में शायद इन बातों का कोई स्थान नहीं है। मुझे उम्मीद है कि संसद एक व्यापक, हालांकि सावधानीपूर्वक शब्दों में, प्रावधान बनाकर न्यायाधीश को न्याय का अंतिम संरक्षक बनाने की बुद्धिमत्ता पर विचार करेगी, जहां उचित राहत में बाधा प्रक्रियात्मक कानून में मौजूद खामियों, यहां तक कि गंभीर खामियों से संबंधित हो। न्यायशास्त्र का लक्ष्य प्रक्रियात्मक और साथ ही साथ सारगर्भित न्याय है। हालांकि मेरे विद्वान भाई द्वारा स्पष्ट रूप से बताए गए कारणों से इस अपील को स्वीकार करना होगा, मुझे निराशावादी स्वर में कहना

होगा कि किसी कानूनी व्यवस्था के लिए निष्पक्षता और सद्भावना के अंतिम परिणाम को प्रक्रियात्मक शुद्धता की वेदी पर बलिदान करना अत्यधिक रूढ़िवादी है, और यदि आवश्यक हो तो प्रक्रिया के नियमों को थोड़ा-बहुत मोड़कर स्पष्ट न्याय के पतन को रोकना भी अतिवादी नहीं है। प्रक्रियात्मक पाप का परिणाम कभी भी न्याय का अंत नहीं होना चाहिए।

वी.पी.एस

अपील की अनुमति दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।